कविता का परिवेश

मनुष्य परिस्थिति का दास है। वह चाहे कोई भी हो–कवि, लेखक धर्मगुरु, राजनीतिविद या खेतिहर–मजदूर। सबसे पहले वह मनुष्य है, मनुष्य योनि सो पैदा होते है। एक मनुष्य के रूप में मनुष्य द्वारा मानव समाज में वह पलते–बढ़ते है। व्यक्ति के रूप उसका व्यक्तित्व का निर्माण उस परिवेश में होता है जिस परिवेश में जनम लेता है।

व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में परिवेश का कितना असर होता है या व्यक्तित्व निर्माण में परिवेश–परिस्थितियाँ कितना हावी होता है व्यक्ति पर इसका एक उदाहरण देखा जा सकता है बच्चा पैदा होते ही कुछ बोल नहीं पाता है अर्थात भाषा जन्मजात नहीं है। भाषा सिखना पड़ता है या वाद में सिखता है। लेकिन तात्पर्यपूर्ण बात यह है, बच्चा नहीं भाषा बोलता है या सिखता है जो भाषा उसके मा–बाप और उस परिवार के लोग बोलते हैं। ऐसा कभी नहीं देखा जाता है कि माँ–बाप तथा परिवार के लोग किसी एक भाषा के है और बच्चा कोई और भाषा सिख लिया। इसके विपरीत देखा यह जाता है अगर किसी बंगाली–भाषी माँ–बाप के घर में पैदा हुए बच्चे को यदि कोई मलयालम या कन्नड़ भाषा–भाषी लोगों के वहाँ दिया जाय तो वह बच्चा सबसे पहले बंगाली नहीं वहीं मलयालम या कन्नड़ ही सिखेगा और बोलेगा। फिर छोटा–मोटा एक और उदाहरण लिया जा सकता है बच्चां पैदा होकर जिस परिवेश में वह बड़ा होता है या जिस परिवेश का सामना वह पहले करता है वह वहीं सब पहले सिखता है जैसा कि एक बच्चे के पिताजी अगर कुम्हार है तो वह जब खेलना सिखेगा तो वह बच्चा भी–भांडे–बरतन बनाएगा उन्हीं से खेलेगा। मतलब परिवेश का असर बहुत खतरनाक असर है जिससे कोई भी बच नहीं सकता है सिर्फ बच्चा ही नही बुढ़े भी। सिर्फ अनपर गवाढ़ या अशिक्षित ही

नहीं शिक्षित, समझदार और सयाने पर भी। चाहे वह नेता या व्यावसायिक हो, या कवि–लेखक या दार्शनिक। यह और बात है कि परिवेश का असर हमेशा दो तरह से होता है, व्यक्ति पर सकारात्मक और नकारात्मक। वह व्यक्ति पर निर्भर होता है कि वह उसे किस रूप मैं स्वीकारे। अवश्य यह भी सच है कि कभी–कभार (बहुत कम) व्यक्ति भी परिवेश पर हावी होता है या पर जाता है। उदाहरण के रूप में महा मानव हजरत महम्मद (छा:) का नाम लिया जा सकता है इतिहासकार या इतिहास के अध्येता भलिभाँति जानते हैं कि जिस समय अरब (मक्का) में उनका जन्म हुआ उस समय का अरबीय–सामाजिक जीवन अत्यन्त खास्ता हालत का था लेकिन हजरत महम्मद (छा:) ने अरबीय समाज को उस हालात से निजात दिलाया और विश्व में एक सु–संस्कृतिवान और सभ्य जाति के रूप में पहचान दिलवाया। ठीक उसी तरह से साहित्य के इतिहास में अगर झांका जाय तो वहाँ भी देखा जा सकता है कई कवि–लेखक हैं जो अपने समय के साहित्यिक परिवेश में बदलाव लाया है। उदाहरण क रूप में यहाँ भारतेन्दु, महावीर प्रसाद द्विवेदी और प्रेमचन्द्र का नाम ले जा सकते हैं। लेकिन यहाँ ध्यान देने की बात है कि यह भी एक तरह से परिवेश का असर ही है। क्योंकि इस तरह के प्रतिकुल परिवेश सबसे पहले कवि या लेस्वक के संवेदना को धक्का पहुँचाता है फिर कवि या लेखक या कोई व्यक्ति उस परिवेश में बदलाव या परिवर्तन लाने के बारे में सोचता है।

आधुनिक कवि–आलोचक और संस्कृतिकर्मी अशोक वाजपेयी भी सबसे पहले एक मनुष्य है, एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में पल–बढ़े ह अत: परिवेश का असर उन पर भी है। यह भी है कि जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है। कवि लेखक कभी लेखक कभी–कभार परिवेश पर भी हावी होता है। क्योंकि कवि–लेखक आम लोगों से कहीं ज्यादा संवेदनशील, सचेत और सजग होता हैं। कहीं न कही कई बार कवि अशोक वाजपेयी के साथ भी ऐसा हुआ है जिनका

साक्ष्य उनकी कवि ताएँ और आलोचना हैं आगे चलकर इन सब का थोड़ा-बहुत लेखा-जुखा किया जाएगा। कवि अशोक वाजपेयी सिर्फ समय के कवि नहीं है वह समयातीत के भी कवि हैं, अनन्त के भी कवि हैं। 'जैसा कि कवि अशोक वाजपेयी की कविता संचयन 'घास में दुबका आकाश' की भूमिका में कहा गया है — 'इस कविता में समय का सच्चा स्पन्दन है पर उस समय का जो मात्र दिया हुआ समय-भर नहीं है बल्कि वह जिसे अदम्य जिजीविषा और कल्पना का साहस लगाता दूसरे समय में बदलता रहता है।' [1] कवि समय, समाज या परिवेश से हर-हमेशा वह प्रतिवद्ध भी नहीं है मगर एक कवि के रूप में वह और उनकी प्रतिभा एकान्त निरपेक्ष भी नहीं है वह तो समय और समाज सापेक्ष है। एक कवि के रूप में अशोक वाजपेयी जितना स्वंय परिवेश और समाज है उतना ही वे परिवेश और समाज का अंग है। अर्थात कवि अशोक वाजपेयी पहले व्यक्ति तो है लोकिन वह समाज में रहते है समाज के बाहर नहीं।

यह सब कहने का ताप्तर्य यह है कि समय और समाज का 'सच' जिसे हम परिवेश भी कह सकते है वह असंख्य-अन-गिनत हैं। जिसे पूरा का पूरा देख पाना किसी के लिए भी सम्भव नहीं है यह वह कवि या लेखक ही क्यों न हो। फिर इस सच्चाई को देखने की नजरिया भी सबका एकसा वही हैं कवि अशोक वाजपेयी कहते हैं — 'साहित्य और सच्चाई को समझ ने की अनेक दृष्टियाँ हैं, कि किसी एक दृष्टि की तानाशाही सृजन विरोधी होती है, कि साहित्य और कलाओं में दृष्टियों के लोकतन्त्र का पूरा सम्मान और अवसर होना चाहिए।' [2] कवि अशोक वाजपेयी कविता या साहित्य को कभी अरण्य या तपोवन नहीं माना हैं। उनका भी मानना हैं कविता या साहित्य जीवन, मनुष्य, संसार भाषा आदि को देखने, समझने विन्यस्त्र करने की स्वतन्त्र दृष्टि है। कविता भी मूलत: मानव अस्तित्व पर दृष्टि पात है। मगर यह भी है कि कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं को लेकर कुछ

पाठक-आलोचकों का मित्था भ्रम भी रहा है। जैसा कि उनकी कविता समाज-निरपेक्ष है जनता से दूर अर्थात कवि और लोगों के बीच अन्तसंबंध का अभाव, आपवीति, देह और गेह का कवि, एक कामातुर प्रेमीक का आख्यान भर आदि। तो कई बार आलोचनाओं का गरम-जल उन पर छिड़काया गया हैं। वास्तव में वे जनवादी, समाज-सापेक्ष नैतिकता और मानवतावादी कवि हैं। उनकी कविताओं में भी या उनकी कविता की काया पर भी समय की स्वरोंचे और इतिहास के नश्रखत स्पष्ट देखा जा सकता है। जैसा कि कवि अशोक वाजपेयी अपना काव्य संग्रह 'समय के पास समय' की भूमिका में कहते हैं — कविता को समय से मुक्ति नहीं है कविता मुक्ति नहीं जिजीविषा है जितनी भाषा में उतनी ही समय में। देखिए उनकी भाषा में — 'कविता की समय से मुक्ति नहीं : वह एक समय से छुटती है तो दूसरे समय के चंगुल में फँस जाती है। कविता मुक्ति नही जिजीविषा है जो जितनी भाषा में है उतनी ही समय में। जो लोग कविता लिखते हैं, वे कभी-कभी या थोड़ा-सा समय भी लिख जाते है। यह आश्चर्य दोनों के लिए प्राय: समान होता है : कविता के लिए और समय के लिए। जिसे होते हुए समय कई बार अलक्षित करता है, उसे कविता दर्ज करती है। कविता और समय दोनों मनुष्य की अतिश्यित निर्मितियाँ है : उनके बारे में पूरे यकीन के साथ कुछ कहना संभव नहीं है।' [3] उनकी ढेर सारी कविताओं में बहुर सारी कविताएँ हैं जो अपने समय और समाज के, अपने परिवेश और परिस्थिति के लगभग हरेक पहलू पर, हरेक प्रश्नों और मुददों का वयान-वखान और व्याकुलता है। जो अत्यन्त संवेदशीलता के साथ मौजुद है। जिसे यदि सहृदयता के साथ देखा जाय तो स्पष्ट देखा जा सकता है। लेकिन हा: जैसा कि पहले कहा जा चुका है इन सबको बरतने की जो तरीका है वह कुछ भिन्न है। ऐसा तो होना स्वाभाविक है हरेक कवि की जीवन-दृष्टि अलग होती है, नजरियाँ अलग और शैली भी। अशोक वाजपेयी का भी है उनका भी

अपना काव्यशास्त्र है। इस प्रसंग कई बार उनसे न जाने कितने लोगों ने सवाल किए हैं। उसका जवाब भी वे देते हैं। उनका एक कथन यहा उद्धृत किया जा सकता है, वे कहते है — 'मेरी एक मुश्किल यह है कि आप जिन्हें सामाजिक सरोकार कहते हैं में उनके अलवा प्रेम, भाषा, शब्द की प्राथमिकता और रक्षा, पड़ोस परिवार आदि को भी उतना ही सामाजिक सरोकार मानता रहा हूँ। मेरी शायद यह विफलता है कि रघुवीर सहाय की तरह सीधे-सीधे समाज आपको मेरी कविताओं में नहीं मिलता क्योंकि मेरा काव्यशास्त्र उनसे अलग है हालाँकि वे उन तीनों कवियों में से हैं, अज्ञेय और शमशेर के साथ, जिनसे मेरी कविता प्रभावित रही है। दूसरी बात यह कि कोई भी बड़ी कविता निरे सामाजिक तक महदूद रहकर बड़ी नहीं बन सकती।

निरला, प्रसाद, अज्ञेय, शामशेर, मुक्तिबोध जैसे बड़े कवि तथाकथित सामाजिकता से कही ज्यादा दुनिया अपनी कविता में खोज-रच पाए हैं। तीसरी बात मैं यह कहूँ कि अगर आप ध्यान से मेरी लगभग चार सौ कविताओं में खोजे तो एक-चौयाई से अधिक कविताएँ उस तरह की मिल जाँएगी जिस तरह की आप सामाजिक सरोकार वाली मानते हैं। मेरे पिछले संग्रह 'समय के पाय समय' में एक लम्बी कविता है 'शताब्दी के अन्त के कगार पर' जिसमें कवि के अलवा मछुआरा, बढ़ई, कुम्हार, कुँजड़ा, लुहार और कबाड़ी अपने लम्बे मर्म कथनों के माध्यम से बीसबी सदी, समय, इतिहास, सच आदि पर अपने अनुभव विन्यस्त करते हैं। इसी संग्रह में ऐसी बहुत सारी कविताएँ हैं जिनमें मैंने स्वंय अपनी स्थिति की कुछ चीरकाड़ की है। लेकिन इसलिए मैं इधर कुछ अधिक सामाजिक हो रहा हूँ यह कहना इन कविताओं का बड़ा सतही और आसान पाठ करना होगा। असल में मेरी नैतिकता का कुछ विस्तार हो रहा है।' [4]

'कोई भी बड़ी कविता निरे समय तक महदूद रहकर बड़ी नहीं बन सकती' यह जो कवि अशोक वाजपेयी का कहना है यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कविता तो

कविता है न कि सामाजिक इतिहास कविता में सिर्फ अपने समय और परिवेश के यथार्थ अंक्नित हो ऐसा स्वीकार किया नहीं जा सकता है। कविता मनुष्य के उच्च, उदान्त और मार्मिक भावों का आकलन हैं जिसे हम सिर्फ समय तक आवद्ध नहीं रख सकते। कविता की काया पर समय की स्वरोंचे और इतिहास के नक्षखत होता ही है पर वह उसके पार भी निकल जाते है और जाना चाहिए। क्योंकि कवि अशोक वाजपेयी की शब्दों में कहे तो सच समय में पूरा नहीं समाता : वह समय के पार भी होता है। सारी कविता तत्काल है, कविता इतिहास और समय से बँधती नहीं है, फिर कविता प्रति समय ही नहीं, प्रति इतिहास भी है। कवि अशोक वाजपेयी का कथन जो 'समय के पास समय' की भूमिका में से है— 'समयका इतिहास संभव है लेकिन कविता का नहीं क्योंकि सारी कविता तत्काल है: उसमें ऐसा कुछ भी नहीं है जो बीत चुका हो। सारी कविता हर समय एक साथ घटती रहती है। कविता इतिहास और समय से बँधती नहीं है हालाँकि दोनों ही उसे अपनी शतों पर बँधने के लिए विवश करने की निरंतर चेष्टा करते रहते ह। कविता उनकी अवज्ञा नहीं करती : पर वह उनकी सेवा-टहल में लगने से इनकार करती है। कविता प्रतिसमय ही नहीं प्रतिइतिहास भी है। कविता के लिए न तो कोई स्वर्णयुग है न ही समय और इतिहास से अस्पृश्य कोई अबोध स्वर्ग या अभयारण्य ही। वह कहो और भागती नहीं, यही जुझती है। समय या इतिहास का कोई भी घमासान हो, कविता उसके बीचोंबीच रहती है। कविता की काया पर समय की खरोंचें और इतिहास के नक्षखत साफ-साफ नजर आते हैं।' [5]

आधुनिक कवि अशोक वाजपेयी एक अत्यन्त सजग-चेतन और चिन्तक कवि हैं। उनकी कविताओं में मैं भी वह चिन्तन वह विचार है जो आज के परिवेश मैं मौजुद और सक्रिय है। फिर उनकी कविताओं में जो चिन्तन विन्यस्त है वह आज के समाज और परिवेश को भी प्रभावित करते है। एक सजग सचेतन और

संवेदनशील कवि होने के नाते हर उन सवालों का सामना करते हैं जो उनकी कविताओं को आन्दोलित और प्रभावित करते है। वह सवाल जो अपने समय की राजनैतिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, धार्मिक और आर्थिक जो भी क्यों न हो। इन समसामाजिक सभी सवालों का सामना वे अपने ढंग से करते हैं, अपनी निजी दृष्टिकोण के तरत अपनी कविताओं में सहेजते-विन्यस्त्र करते हैं। यहा पर एक और बात पर ध्यान देना जरूरी है। कि आधुनिक कवि अशोक वाजपेयी के इन मुददों पर विचार करते वक्त याद रखना होगा कि उनका चिन्तन सिर्फ भारतीय समाज और समय को लेकर नहीं है हालाँकि उनका चिन्तन विश्वस्तर का चिन्तत है। कवि अशोक वाजपेयी विश्वस्तर पर समसामाजिक व्यक्ति और समाज के आन्तरिक और वाह्य जीवन है, समास्याएँ है, फिर परिवर्तन और परिवर्धन है उनको भी वे दृष्टि में रखते है। और व्यक्ति और समाज का जो रिश्ता है उसे बिल्कुल अलग न मानकर सापेक्ष ढंग से प्रस्तुत करते हैं। एक तरह से कवि अशोक वाजपेयी की प्रयोगशील चिन्तन तथा मानसिकता हिन्दी साहित्य की पुरानी भावभूमि तथा परम्पराओं से हटके जीवन की नयी भावभूमि और चिन्तन तक पहुँचते है।

देखा यह जाता है कि हर काव्यान्दोलन के पीछे नया जीवन-दर्शन होता है उसी तरह से हर बड़े कवि के काव्यों में एक नया जीवन-दर्शन होता है। यही दृष्टि कोण मूलत : एक काव्यान्दोलन को दूसरे काव्यान्दोलन से अलग करता है फिर एक बड़े कवि को दूसरे से अलग पहचान या ऐसा ही नया दृष्टिकोण कोई भी एक बड़े कवि को उनके या अपने समकालीनों से पृथक भी करता है। इस दृष्टिकोण के साथ आत्मरक्षा या अस्तित्व रक्षा का सवाल भी जुड़ा हुआ होता है। तो हमे यह भी दृष्टि में रखना पड़ता है कि वह कवि जिसकी चर्चा कर रहे है अस्तित्व रक्षा के लिए जिस प्रकार का जीवन विषयक दृष्टिकोण को अपनाया है, ताकि बहती हुई परिवेश परिस्थितियों में उससे उत्पन्न तनाव एंव संघर्ष के दबाव को सहते हुए आगे

बढ़ते है। अत: दृष्टिकोण, युगम्बोध, सामाजिक के दबाव को सहते हुए आगे बढ़ते है। अत: दृष्टिकोण युग म्बोध, सामाजिक चेतना और प्रगति कल्पना से भी जुड़ जाता है तो कवि के दृष्टि कोण की पहचान उनके काव्य की अर्थवत्ता की परख के लिए आवश्यक ह। कवि अशोक वाजपेयी नि:सन्देह आधूनिक युग के एक बड़े कवि हैं। एक कवि होने के नाते उनकी संवेदना अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्म है। वे भी समाज को, जीवन का, मानव मूल्य को अपनी सूक्ष्म दृष्टि से देखते परखते हैं। सिर्फ अशोक वाजपेयी ही क्यों हर कवि, हर लेखक जिन्हें हम सर्जनशील स्रष्टा कहते हैं वे जाहिर है भावों का ही चित्रकार होते हैं, वह समय और समाज के स्थ्ल-सूक्ष्म सच्चाई को अपने मन की आँखों से देखते है फिर अपने सृजन में उसका आकलन करते है। कवि अशोक वाजपेयी भी इसका अपवाद नहीं है। क्योंकि उनमें भी सचेतन नैतिक बोध विद्यमान है। कवि अशोक वाजपेयी की जीवन दृष्टि के प्रसंग में अरविन्द त्रिपाठी का कहना दृष्टव्य है वे कहते हैं — 'अशोक वाजपेयी की कविताएँ मुझे क्यों पसंद है इसका उत्तर देना एक तरफ आसान है तो दूसरी तरफ कठिन भी। क्योंकि वे सिर्फ प्रश्नों के कवि नहीं बल्कि समग्र जीवन की उच्छल अनुगूँजों के कवि हैं। उनकी कविता प्रश्न पूछने के बजाय उत्तर दूँढ़ती है। जीवन और समाज के ऐसे प्रश्नों के उत्तर जिसे हमने अपनी कविता से पूछना प्राय: बद कर दिया है। इसलिए उन्हें सिर्फ 'देह और गेह' का कवि कहना ज्यादती होगी। देखा जाय तो वे समग्र जीवन की अनुभूतियों को शब्द देने वाले कवि हैं। वे समय-बिद्ध और समय-बद्ध कवि होने के बजाय, समय के कभी पीछे, काफी पीछे जाते हैं और फिर अपने समय से आगे जाकर जीवन-समाज के ऐसे प्रश्नों को सामने लाते हैं जो पाठक को चमत्कृत नहीं बल्कि उद्वेलित करते हैं। इसलिए उन्हें समय बिद्ध कवि कहने के बजाय कालबिद्ध कवि कहना ज्यादा उपयुक्त है। उनकी कविता में यह काल बोध कोई आध्यात्मिक या रहस्यवादी प्रत्यय नहीं बल्कि

उसका समग्र बोध भौतिक, सामाजिक और साधारण जीवन की ही कथा है। उनकी कविता का पाट इसीलिए उनके समकालीनों के मुकाबले कहीं बहुत चौड़ा, विस्तीर्ण और गहरा है। जिसे लाँघने, थहाने में धैर्य की जरुरत है। वे प्रकृति से लेकर मनुष्य, पृथ्वी से लेकर ब्रहमाण्ड, माँ-पिता से लेकर अज्ञात पितरों: एक बच्चे की खोई गेंद से लेकर जाड़े के दिनों में ठिठुरते बीड़ी पीते बूढ़े चौकीदार तक की खबर अपनी कविता में रखते हैं। उनकी काव्यधारा में सिर्फ एक ही तरह का प्रवाह नहीं है बल्कि अनेक ऐसे प्रवाह हैं जिसका उदगम स्त्रोत हजारों साल की भारतीय कविता में रहा है।' [6]

समय और समाज के लिहाज से अत्यन्त सजग और चौकने कवि अपने समय के समाज के तनाव और संघर्ष से बाखबर हैं। जीवन और जगत क उन हरेक पहलूओं पर सतर्क नजर है जहाँ भी नैतिकता और मानव-मूल्यों का हनन हो रहा हो। कवि अशोक वाजपेयी भी जनवादी चेतना के कवि हैं, लोक जीवन से संस्पृक्तता के कवि है। वह भी अत्यन्त संवेदनशीलता के साथ। क्योंकि वे भी जीवन और जगत से गहरा प्रेम करनेवाले कवि हैं। जीवन और समाज में गहरे आशावाद के कवि हैं। अपने समकालीन, परवर्ती या पूर्ववर्ती पीढ़ी के कोई भी प्रतिबद्ध कवि के काव्य संघर्ष से कवि अशोक वाजपेयी का काव्य-संघर्ष कहीं भी कम महत्व पूर्ण नहीं है। उनकी कविताओं का मुख्य सरोकार मनुष्य ही है। अरविन्द त्रिपाठी से कवि अशोक वाजपेयी का काव्य संघर्ष कहीं भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। उनकी कविताओं का मुख्य सरोकार मनुष्य ही है। अरविन्द त्रिपाठी भी कुछ ऐसा ही कहते हैं — 'इस तरह से देखा जाय तो अशोक वाजपेयी सामाजिक यथार्थ की सच्चाइयों से मुँह नहीं चुराते बल्कि कई बार वे बहुत साहस के साथ चीजों से बेखौफ आँख मिलाते हैं। लेकिन यह सही है कि वे औरों की तरह उतने मूहँजोर कवि नहीं है, जितना वे अपने आलोचनात्मक लेखन में दीखते हैं। वे अपनी कविता

में हमेशा विनम्र, प्रेम पिपासु, उत्सुक, अन्वेषी, कहीं कहीं मायावी मनुष्य लगते हैं, जिसे इस जीवन जगत से गहरा प्रेम है। एक और उल्लेखनीय तथ्य है कि वे समकालीन काव्य शास्त्र की बनी-बनाई रूढ़ियों, प्रचलित शस्त्रों को छोड़कर अपनी राह पर चलने वाले निर्भय कवि हैं। ऐसा करते हुए तो बार-बार भवभूतिको स्मरण करते हैं। जैसा कि 'मुझे चाहिए' कविता में उनका कवि दुनिया के अभिशप्र लोगीं की जिंदगी बदलने के लिए लालटेन की रोशनी के बजाय एक धधकता हुआ सूर्य चाहता है —

'इस जरा सी लालटेन से नहीं मिटेगा
मेरा अंधेरा
मुझे चाहिए
एक धधकता हुआ ज्वलंत सूर्य'

बड़ी बात यह है कि आज समाज में फैली हुई विषमता को दूर करने के लिए जब लोगों को सारे विकल्प शून्य नजर आ रहे हैं ऐसे में कवि को विश्वास है कि कविता ही एक अन्तिम विकल्प शेष है जो आज आदमी और समाज को साहस के साथ जीने का संकल्प दे सकती है। उसे यकीन है कि कविताएँ साथ देगी —

'मैं अपने खाली हाथ
और भरा हुआ हृदय लिए लौट जाऊँगा
अपने अँधेरे में
जहाँ कविताएँ दियों की तरह
जलती बुझती रहती हैं।' [7]

कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं में आप अपने समय और परिवेश के हर वर्ग के हर प्रकार का जीवन संघर्ष के हरेक चित्रों को आसानी से देख सकते हैं। मसलन निम्नवर्गीय असहास आम आदमी की जिन्दगी का चित्र, शोषित और

सर्वहारा वर्ग का चित्र, मजदूरों की दयनीय स्थिति का चित्रण, ग्राम्य जीवन का त्रासदी बोध का चित्र, व्यक्ति की विवशता तथा सामाजिक ढाँचे के अवरोधों का चित्रण, अंतर्विरोधों और विसंगतियों से साक्षात्कार तथा परिवेश में व्याप्त विसंगतियों का चित्र, मध्यम वर्ग के मजबूरियों का वर्णन, कुंठा और संत्रास का चित्रण, शासन से उत्पन्न विकृतियों का चित्र, लोकतन्त्र में व्याप्त अराजकता, व्यवस्था विरोध का चित्र, पूँजीवादी की अन्याय का चित्रण, शासन तन्त्र के क्रुरता का वर्णन, राजनेताओं के भ्रष्टता का चित्रण, युद्ध की विभीषिका का चित्रण, बुर्जुआ संस्कृति का चित्र, स्त्री की यातना का चित्रण, संबध हीनता के मध्य-नजर मानवीय संकट का चित्रण, संकीर्णता से ग्रस्त समाज में उदारता का आह्वान, प्रेमहीन संसार में भाई- चारे का न्यौता, जीवन के एक हिस्से मृत्यु से दो चार, बुद्धि जीवियों पर व्यंग्य, संधर्ष के आह्वान का चित्र, आशावादी भावनाओं का चित्रण, निज पीड़ा से सामाजिक पीड़ा की अभिव्यक्ति पराजय बोध की भावनाओं का चित्रण, धर्माधता पर व्यंग्य आदि।

कवि अशोक वाजपेयी अपने समय के अत्यन्त जागरुक, संवेदनशील और सहृदय कवि हैं। वे अपनी कविता के अहांन से अपने समय और परिवेश के हर तबके के लोगों की दशाओं का,स्थितियों का जायजालेने हैं। उनकी ढेर सारी कविताओं में वर्तमान समाज के विशेषता निम्नवर्ग के असहाय आम आदमी की जिन्दगी के दयनीय-स्थिति को यथा-चित्र देखा जा सकता है। एक संवेदनशील कवि अपनी कविताओं के द्वारा अन्य नहीं तो उन सबके सामने सिर झुकाकर उन सबकी स्तुति करते है। कवि को पता है और यकीन है सच्ची अर्थ में यही लोग हमारी दुनिया को सुन्दर बनाते है। इस दृष्टि से कवि अशोक वाजपेयी की 'स्तुति' शीर्षक कविता का उल्लेख किया जा सकता है। इस कविता में कवि सुबह-सुबह थरमें दुध दैनेवाले, अखबार बेचने वाले, घर की साफ-सफाई करनेवाली, खाना

पकानेवाली, कड़ी धूप में सिरपर ईंटे ढोनेवाला, सव्जी बेतने वाले, कुटपाथ पर अखबार बिछा कर सोने वाले, (अपना घर नहीं है) सवारियों को आधी रात को घर पहुँचाने वाले रिक्सेवाले, दुसरों का घर सामान को चौकीदारी करने वाले और पार्क की वेचंपर भुखा सुनेवाले बूढ़े सबकी स्तुति करते है।

इस कविता से एक बात साफ जाहिर होता है कि कवि अशोक वाजपेयी की संवेदनाएँ कितनी फैली-बड़ी है और किस-किस की स्पर्श करता हुआ चलता है। अर्थात समाज हर तबके के, पेश के, खाच तौर पर छोटे-ठोटे काम करनेवाले सबकी स्थिति, मजबूरी, और हालात से वे वाकिफ हाल है। साथ ही उन सबके प्रति दया-दृष्टि तथा सम्मान है। कवि को पता है समाज हर कोई सम्पन्न बन नहीं सकते है, फिर कवि हर किसी की समस्याओं का समाधान भी कर नहीं सकता है। महत्वपूर्ण बात है इन लोगों को समाज में हमेशा हेय-दृष्टि से देखा जाता, जो होना नहीं चाहिए। कवि अन्तत : इस कविता के माध्यम से हमारी दृष्टि में बदलाव लाना चाहा हैं। उदाहरण के रूप में कुछ पंक्तियाँ उद्धृत किया जा रहा हैं —

'मैं स्तुति करना चाहता हूँ
उसकी जो दोवारें पोतता है
और कड़ी ध्प में इमारतों में लगाने के लिए ईंटे सिर पर ढोता है,
उसकी जो देररात गए सब्जियों की दूकान मोमबत्ती जलाकर खुली रखता है
और उसकी जो कहीं और जगह न पाकर फुटपाथ पर अखबार बिछाकर थककर सो जाता है;
और उसकी जो खुद मरघिल्ला होने के बावजूद चार थुलथुल सवारियों को पसीना-पसीना होते हुए भी आधी रात को उनके घर पँहुचाता है;
औ उसकी जो चौकीदारी करता है मुस्तैदी से उस सबकी
जो उसका नहीं है;' [8]

इस सिलसिले में कवि अशोक वाजपेयी की एक और कविता 'यह विलाप नहीं' का जिक्र किया जा सकता है। कवि कहते है कि यह सब (कविताएँ) सिर्फ विलाप नहीं है, तीरव प्रार्थना है, चीख है वह भी किसी देवता से नहीं अर्थात मनुष्य से और मनुष्य के लिए। जैसे दूरदेस से लौटता हुआ पक्षी पाता है कि उसका धोंसला जो बड़ी मेहनत से तिनका-तिनका जोड़कर बनाया था आँधी उड़ले गई। इस का मतलब कवि देख रहा है कि सारे प्रयास विफल होता जा रहा है। अत: कवि एक और उपाय के रूप में विलाप नहीं प्रार्थना करना चाहते है जिसकी इबारत संसार भर में जहाँ कही भी आँसु झर रहाहै फिर सिसकी या चीख है। इस कविता सें भी यह प्रमाणित होता है कि समाज के हर स्तर के आर्त-पीड़ित, शेषित वर्ग के प्रति कवि अशोक वाजपेयी की संवेदनाएँ कितनी गहरी है —

'यह ध्वस्त मन्दिर के पिछवाड़े पड़े मलबे में दबी
भग्न मूर्ति के ऊपर रेंगती हीमकों की कतार का विन्यास है
यह चिथड़ों की तरह
तेज हवा में फड़फड़ाते
दुख के आवाक होते जाते शब्दों का बीहड़ संगीत है।
संसार मे जहाँ कहीं भी आँसू झर रहा है
सिसकी या चीख ह
वे सभी वही इस प्रार्थना की इबारत हैं।
यह विलाप नहीं है।' [9]

आज का समाज कुछ ऐसा बन गया है जहाँ लोग अपने दु:ख और घाव को छूपाकर रखते हुए एक कृत्रिम जीवन जीते हैं। लोग सच्चाई ढाँपते हुएँ एक तरह से दिखाव का जीवन जीते हैं वह इसलिए कि सच्चाई को कहने का हिम्मत भी खो चुके है स्वंय भोगते हुए भी उसे जाहिर नहीं कर पाते है। यह भय सताता है कि

अगर जाहिर करेंगे तो और खून बह जाएगा। फिर हमारी समाज व्यवस्था भी ऐसा है कि हम लहू देखना नहीं चाहते है जबकि रोज-ब-रोज न जाने कितने लहू बहता जा रहा है। समाज व्यवस्था यहाँ तक टूट गया है कि यातना और अत्याचार को हम चुपचाप और सहर्ष सह लेते अपनी आँखों से आसू तक नहीं निकलने देते है हालाँकि अन्याय और अत्याचार विरूद्ध लड़ना चाहिए आवाज उठाना चाहिए लेकिन दुर्भाग्य से वैसा किया नहीं जाता है कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में समाज के इस यथार्थ को बहुत मार्मिकता के साथ वर्णन करते है। उदाहरणार्थ 'वही जहाँ से' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ उद्धृत किया जा रहा हैं —

'लहू दिखाई क्यों नही देता ?
उसकी लालिमा क्या डर से सूखकर सफेद पड़ गइ है
और क्या यह ऐसा समय है कि
चूँकि रोज हजारों का कहीं-न-कहीं भूगोल में बहता है,
लहू देखना हमने बन्द कर दिया है ?
रगों में होगा, लहू ने आँख से टपकना छोड़ दिया है:
आँखू भी अब आँखों में कम पर ज्यादा नजर आते हैं।
यह वह समय है जो लहू और आँसुओं को सुखा-सोखकर
जीने का नया व्याकरण तैयार कर रहा है।' [10]

कवि अशोक वाजपेयी अपने समय को गाढ़े अँधेरे से तुलना करते हुए अपनी कविता 'गाढ़े अँधेरे में, शीर्षक में कहते हैं कि आज का समय अँधेरे का समय है कहीं कुछ दिखाई नहीं देते हैं लेकिन हत्यारों का बढ़ता हुआ हुजूम साफ-साफ दिखाई देता है। कवि समाज में बढ़ते हुए हिंसा और खून-खरावे को देखते हुए ताज्जुब होते हैं कि इतना खुल्लुम खुल्ला यह सब हो रहा फिर भी सब खामोश ह हत्यारे की खूँखार आँखे उसके तेजधार धार हथियार उनकी भड़कीली पोशेके

यहा तक कि उनके सधे-सोचे-समझे कदम सब कुछ देखते हुए, जानते हुए भी कोई विरोध नहीं करता है। कवि अपनी इस कविता की अहाते से आवाज उठाता है कि आइए हम सब मिलकर इन सबका प्रतिरोध करें और एक ऐसा समाज गढ़े जहा सबके सब चैन का श्वास ले सकें —

'इस गाढ़े अँधेरे में
यों तो हाथ-को-हाथ नहीं सूझता
लेकिन साफ-साफ नजर आता है:
हत्यारों का बढ़ता हुआ हुजूम,
उनकी खूँखार आँखें,
उसके तेज धारदार हथियार,
उनकी भड़कीली पोशाकें,
मारने-नष्ट करने का उनका चमकीला उत्साह,
उनके सधे-सोचे-समझे कदम।' [11]

लोकतान्त्रिक समाज में कई बार नेता लोग अपनी स्वार्थ सिद्ध करने के लिए आमलोगों को किस तरह फूसलाकर उन लोगों के द्वारा समाज में किस तरह हिंसा फैलाते है या साम्प्रदायिक विष व्याप्त करते हैं। कवि इस सत्य का विश्लेषण करते हैं कि साधारणत : समाज के आम जनता सहज-सरल होता है, वह भाई-चारे का जीवन निर्वाह करना चाहते हैं मगर स्वार्थान्वेषी नता लोग उन्हें भड़काता है और समाज में अराजकता फैलाते है। समसामयिक दौर में ऐसी धटनाएँ बार-बार हो रहा है जिससे कवि चिन्तित हैं। ऐसे ही घटनाओं चित्रण कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविता 'मैंने कुछ नहीं किया' शीर्षक में करते हैं क़छ पंक्तियाँ उद्धृत किया जा रहा हैं—

'मैंने कुछ नहीं किया —

जिस और वे जा रहे थे, मैं भी गया;

वे पत्थर फेंक रहे थे, मैंने भी फेंके;

उन्होंने आग लगाई, मैंने भी लगाई;

फिर वे भागे, मैं भी भागा :

मैंने कुछ नहीं किया।' [12]

'साम्प्रदायिक दंगा' यह आज के समाज का ही नहीं, यों कहा जाय हमेशा समसामयिक समस्या रहा है। मूलत : समसामयिक समाज के क्षमता लोभी राजनैतिक नेताओं के प्ररूचना से ऐसा दुष्कार्य होता आया है। वे लोग कार्यत : इसमें भाग नहीं लेते है मगर इस तरह अफवाहे फैलाते है कि लोग सड़क पर उतर आते है। अर्थात अपनी स्वार्थ और क्षमता हथियाने के लिए इसी समाज के एक तबके के कुछ लोगों को हथियार स्वरूप इस्तेमाल करके समाज में अशांति फैला रखता है। न जाने इस तरह की दंगे और आगजनी में कितने लोगों की जान चली जाती है और कितने बेधर हो जाता हैं। फिर वही लोग जो आग लगाते हैं उन्हीं लोग आग बुझाते भी है। यह नेता लोगों का ही चाल होता है। कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविता 'आग और उसके बाद' शीर्षक में इसका बहुत ही सुन्दर ढंग से पर्दाफाश करते हैं। समसायिक दौर में यह एक ज्वलन्त समस्या है कवि इस तरह का निष्ठूर, बर्बर और घृणनीय कार्य से मर्माहत हैं। प्रस्तुत कविता की कुछ पक्तियाँ उद्धृत किया जा रहा हैं —

'वे आग बुझाने के बाद पीपल के नीचे बने चौंतरे पर

सुस्ता रहे हैं :

कल वे आग लगाने के बाद कुछ उसकी लपटों से,

कुछ अपनी फुरती स थक गये थे।

वे उस सबको मौका मिलने पर राख कर देना चाहते हैं
जो उनका नहीं है और कभी नहीं होगा:
रहीम की दूकान, अब्दुल का ढाबा, करीम का ठेला,
उसके बगल में रामस्वरूप का स्टोर
और यशोदाबाई को खोली।' [13]

कवि अशोक वाजपेयी की कई कविताओं में युद्ध की विभीषिका का वर्णन अत्यन्त मार्मिकता के साथ हुआ देखने को मिलता है। इन कविताओं को देखते हुए यह अनायास समझा जासकता है कि कवि अशोक वाजपेयी को युद्ध शब्द से ही नफरत हैं। क्योंकि युद्ध हमेशा होता है भाई और भाई के बीच पड़ोसियों के साथ जहाँ आखिर मारा जाता है आदमी ही। और कलंकित होता है मानवीयता। कवि का विचार है कि युद्ध हमेशा सैकड़ों समस्याओं का जन्म देता है। कवि विश्व भर में जहाँ कहीं भी युद्ध होता है, हो रहा है उसको लेकर त्रस्त है, परेशान है। वे अपनी कविताओं के माध्यम से युद्ध की विभीषिकाओं का यथा-चित्रण कर ने के साथ-साथ यह सन्देश देते हैं कि युद्ध कतई किसी भी समस्याओं के समाधान का रास्ता नहीं है, युद्ध में हमेशा लोगों की जाने चली जाती है। युद्ध हमेशा मानव और मानवीयता के लिए घातक है, कलंक है। अत: हमें उससे दूर रहना चाहिए। युद्ध सम्बंधी उनकी कविताओं में इस तत्थ्य पर अधिक बल रहा है कि युद्ध में जयी होकर हम जश्न मनाते है, गौरव अनुभव करते हैं। पल भर भी नहीं सोचते है आखिर हम जयी हुए किसके ऊपर? जिन लोगों को मृत्यु के घाट-उतार कर विजयी हुए वे भी तो हम जैसा ही मनुष्य है, किसी के बेटे, पति, और भाई! कवि अशोक वाजपेयी एक और महत्वपूर्ण बातों की और दृष्टि-खींचना चाहता हैं कि किसी युद्ध में जयी होकर जब हम उत्सव मनाते हैं, आनन्द में मत्त होते हैं लेकिन

इस तत्थ को जाहिर नहीं करते हैं कि आखिर युद्ध में गए थे कितने उनमें से लौटे कितने। इस तरह से कवि अशोक वाजपेयी युद्ध को लेकर कई तरह से सोचते है, विचार करते हैं अन्त तक व मानते हैं कि युद्ध चाहे जहाँ भी जिसके बीच क्यों न हो वह एक पाशविक क्रिया है, और बर्बरता है। उदाहरणार्थ उनकी एक कविता जिसका शीर्षक है 'बर्बर और बचपन'। इस कविता में कवि बचपन में जिन बच्चों को नैतिकता का पाठ पढ़ाया जाता है, धार्मिक उपदेश सिखाया जाता हैं और यह भी कि प्रेम और सहयोग से ही जीवन सार्थक होता है वही बच्चे बड़े होकर किस तरह रक्त पिपासू बनते हैं, प्रतिपक्ष को मारने के लिए उतारू होते है और इसी में वह आनन्द अनुभव करते हैं जीवन धन्य समझते हैं। और वह इसलिए क्योंकि उसे बड़ा होने पर ऐसा करने के लिए प्रशिक्षण दिया जाता है। कुछ पंक्तियाँ उद्धृत किया जा रहा हैं —

'बड़ा होने पर उन्हें दूसरों की जमीन और पड़ोस,
जानमाल ध्वस्त करने का प्रशिक्षण दिया गया
और उन्होंने मुस्तैदो से अपनी जिम्मेदारी समझते हुए
सबको समान और मुनासिब बेरहमी से
मौत के घाट उतारा।
बूढ़े-बच्चों-जवानो-स्त्रियों में
रत्ती-भर भेदभाव नहीं किया।
नष्ट करते हुए उन्हें खेल जैसा मजा आया
और उन्होंने अपनी जीत का शानदान जश्न मनाया।' [14]

कवि अशोक वाजपेयी की 'हार-जीत' शीर्षक कविता अत्यन्त महत्वपूर्ण और विचारोत्तेजक कविता है। इस कविता में उनके युद्ध सम्बंधों विचारों और दृष्टियों की स्पष्ट छबि देखा जा सकता है। प्रस्तुत कविता में इस और ध्यान दिलाता

है कि युद्ध में विजयी होना भी आखिर हारना ही है और वह हारना मानवता से, इंसानियत से हारना है। कवि अफसोस भी करते है कि इस हार के बारे में कुछ लोगों पता है, जानकारी है मगर वे बोल नहीं पाते है यदि बोला भी जाय फिर सुननेवाला कोई नहीं है। और इसी के साथ आमलोगों को, जनता को पता नहीं रहता है कि युद्ध किससे था, किस के लिए था। फिर इसी के चलते कवि एक कीमती सवाल भी करते है कि जनता को यह मालूम नहीं कि विजय किसकी हुई? शासक की, कि नागरिकों की? कुछ पंक्तियाँ —

'वे उत्सव मना रहे हैं।
सोर शहर में रोशनी की जा रही है। उन्हें
बताया गया है कि उनकी सेना और रथ विजय प्राप्त कर लौट
रहे हैं। नागरिकों में से ज्यादातर को पता नहीं है कि किस युद्ध
में उनकी सेना और शासक गए थे, युद्ध किस बात पर था। यह
भी नहीं कि शत्रु कौन था। पर वे विजयपर्व मनाने की तैयारो में
व्यस्त हैं। उन्हें सिर्फ इतना पता है कि उनकी विजय हुई। उनकी
से आशय क्या है, यह भी स्पष्ट नहीं है: किसकी विजय हुई—
सेना की, कि शासक की, कि नागरिकों की?' [15]

कवि अशोक वाजपेयी देश-दुनिया भर में जहाँ कहीं भी युद्ध के कारण घर-वार और अपने परिवार परिजनों को खो सा है उन की मदद के लिए अपनी कविताओं में आपील करते हैं। उन सबके लिए कवि के हृदय में ममता तथा दया है जिसका प्रतिफलन उनकी कविताओं में स्पष्ट देखा जा सकता है। इसी के तहत कवि के 'पेरिस में आठ दिन' शीर्षक के अन्तर्गत सातवाँ दिन: 'हमें फिर' कविता पंक्तियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं जहाँ कवि का कहना है कि युद्ध ने जिन बच्चों को अनाथ कर रहें विश्वभर में उन सबके लिए हमें आवाज उठाना चाहिए। उन सबकी

आँखों से आँसू पोंछना चाहिए। उन बच्चों के सपनों की चौकसी करना चाहिए। इस अँधेरे के खिलाफ अलाव जलाना चाहिए। कुछ पक्तियाँ उद्धृत हैं —

'हमें फिर अपनी आवाज उठाना चाहिए,
अपने हाथ और अपने गीत
उन बच्चों के लिए
जिन्हें युद्ध अनाथ कर रहे हैं
सारे भूगोल में।
हमें आँसू पोछंना चाहिए
थकी हुई माताओं को सुला देना चाहिए,
चौकसी करना चाहिए उनके बच्चों के सपनों पर,
हमें ठंड में अलाव जलाना चाहिए,
अँधेरे में अलख।' [16]

वर्तमान समाज में उदारता जैसे एक महतगुण लुप्तप्रायः होता जा रहा है। लोग अपने को लेकर इतना व्यस्त और मशगुल हो गए हैं कि दूसरों के बारे में सोचने के लिए फूरसत ही नहीं मिलते है। कोई अत्याचारित मजलूम, दुखी और भुखा आदमी अगर मदद के लिए पुकार रहा है या चीख रहा उसे अनसुना करते है, नजरे हटा लेते है। कवि अशोक वाजपेयी इस तरह से बेदर्द होते जाते समाज और लोगों को लेकर काफी दुखी और चिन्तित हैं वे कहते हैं कि राहत, हिम्मत और आकांक्षा पर सबका हक है सच में भी जैसे जल में सबका हिस्सा है। कवि वहीं से आना चाहता है जहाँ प्रार्थना में लीन लोग अत्याचार के विरोद्ध उठी आवाज को अनसुना नहीं करते हैं। फिर कोई भी मदद के लिए गुहार लहाए तो उन्हें हा : में उत्तर मिले कवि अशोक वाजपेयी को कविता 'वहीं से आऊँगा' शीर्षक की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं — '

'मैं वहीं से आऊँगा

जहाँ प्रार्थना में डूबे लोग

अत्याचार के विरूद्ध उठी चीख को अनसुना नहीं करते,

जहाँ कोई भी पुकारे दुखी या कोयल या राह भूल गई बुढ़िया

उसे उत्तर मिलता है

मैं वहीं से.....' [17]

कवि अशोक वाजपेयी एक ऐसे कवि हैं जो समाज के, व्यक्ति के छोटे–छोटे सच् को अपनी कविता में जगह देते हैं। हालाँकि वह छोटा नहीं है बल्कि कहा जाय बहुत बड़ा और महत्वपूर्ण सच है। ऐसा ही एक सच से हमे परिचित कराते हैं कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविता 'खाली हाथ' शीर्षक में। साहित्य के संसार में कवि लेखक और बुद्धिजीवि कहलाने वाले लोग जिन्हें हम मार्गदर्शक के रूप में मानते है, समझते वही लोग किस कदर अन्दर से भ्रष्ट और अनौतिक होते है उसके बारे में इस कविता में कहा गया है। साहित्य के संसार में जो खेमवाजी और गुटवाजी है वह भी सत्ता के लिए उसको रेखांकित करते हुए कवि का कहना है कि जिन्होंने अपने खेमे का झंडा फहराने के अलवा और जयध्वनि में अपना स्वर वुलन्द करने के अलवा दरअसल कुछ नहीं किया, कुछ नहीं रचा। और अपनी हालत को बदलने के अलवा कहीं कुछ नहीं बदला वही लोग सत्ता में होते हैं, सिंहासन पर होते है। जबकि असल में जो सिंहासन पर होना चाहिए कोलाहल में स्वर न मिलाने के कारण उन्हें सिंहासन तो दूर किसी भी सूची तक में नाम नहीं रहता है —

'जिन्होंने कुछ नहीं किया

कोलाहल में अपना स्वर दिलाने के सिवाय

जिन्होंने कुछ नही रचा

और जिनसे एक हरी पत्ती तक बचायी न गयी

वे सब अब

सिंहासन, सिंहद्वारों, गवाक्षो पर आसीन हैं।

उन्होंने अपनी हालत के आलवा

कहीं कुछ और नहीं बदला' [18]

कवि अशोक वाजपेयी की ठेर सारी कविताओं में कुछ कविताएँ ऐसी है जहाँ कवि अपने अफसरी जीवन के कुछ खट्टी-मिठी अनुभव को दूसरों के साथ साँझा करते है। इन सब कविताओं में कवि इमानदारी के साथ अपने बहाने समाज के कुछ ऐसे सच्चाई और यथार्थ सामने लाते है जो आमतौर पर्दे के पीछे ही रह जाता है। यहाँ ध्यान देने की बात है कि कविता में या साहित्य में अपने में हमेशा दूसरे शामिल रहता है और कवि अशोक वाजपेयी कई बार स्पष्ट भी कर चुके है कि कवि को रूपक चाहिए और कई बार कवि अपने को ही रूपक बनाते है। तो कवि अशोक वाजपेयी की इन कविताओं उस तरह भी पढ़ा जा सकता है। ऐसे ही एक महत्वपूर्ण कविता है कवि अशोक वाजपेयो की 'उन्ही में से एक' शीर्षक से। प्रस्तुत कविता में कवि अपने समय को स्वर्ग-नरक हीन समय कहते हुए यह कहना चाहा है कि ऐसे समय में अपने किये का दंड बहुत कम मिलता है इसके वीपरीत अक्सर दूसरों के किये का खामियाजा भूगतना पड़ता है। अर्थात जिन्हें काल कोठरी में सड़ रहा होना चाहिए वे शान से सिंहासन पर आरोढ़ है फिर इसी के चलते कई निरपराध-कर्तव्यपरायण व्यक्ति की कुरसी थी चरमरा जाता है। कवि अशोक वाजपेयी इस कविता में उस सामयिक यथार्थ को उजागर करते हैं कि वर्तमान शासन व्यवस्था में किसी भी भले और नीतिपरायण व्यक्ति के लिए जगह नहीं है। उसके दो ही रास्ता है या तो ओरों के जैसा भ्रष्टचारिता में शामिल होना पड़ेगा नहीं तो चूप रहना होगा। चूप रहना भी एक तरह से उसमें शामि होना ही है। कुछ पंक्तियाँ उदाहरणार्थ पेश हैं —

'मैं जानता हूँ कि हमारे स्वर्ग-नरकहीन समय में
अपने किए का दंड बहुत कम मिलता है
और हम अकसर किसी और के किये का खमियाजा भुगतते हैं।
मुझे पता है कि
जिन्हें काल-कोठरी में सड़ रहा होना चाहिए
वे सिंहासन घर लकदक बैठे हैं
लेकिन इससे मेरी काठ की कुरसी क्यों यकायक चरमरा गयी
यह समझाया नहीं जा सकता।
अपने समय के अत्याचारों में मैं शामिल न हुआ होऊँ
लेकिन उनमें से एक भी मेरी बजह से कम खूँखार या
कुछ कम जोर पड़ा हो ऐसा तो नहीं हुआ :
तलघर में सही, मैं उन्हीं में से एक था।' [19]

इस दृष्टि से कवि अशोक वाजपेयी की एक और विशेष उल्लेखनीय कविता है 'हलफ' शीर्षक से। इस कविता में कवि भारतीय न्यायिक व्यवस्था का खोखलापन को उजागर किया है। वे कहते हैं कि हमारी न्याय व्यवस्था भी आज बिलकुल निरपेक्ष और पवित्र नहीं रहा है। क्योंकि यह न्याय व्यवस्था भी आज भ्रष्ट शासक तन्त्र के चुंगल से बाहर नहीं है अर्थात अदालत पर भी आज भरोसा नहीं किया जा सकता है वहाँ भ्रष्ट नेता का बोलबाला हैं उन्हीं लोगों के इशारे पर फैसला दिया जाता है। कई बार जुर्म के लिए नहों सिर्फ सिर न झुकानें के कारण सूली पर चढ़ाया जाता है। बिना जुर्म किए या बिना अपराध किए भी किसी को कठघरे में खड़े किए जा सकते है और बिना सबूत और गवाही के भी सजा दिया जाता है। कुछ पंक्तियाँ उद्धृत हैं —

'मुझे पता है कि हमारा समय ऐसा है कि

किसी को किसी जुर्म के लिए नहीं,

सिर्फ अपना सिर न झुकाने और ऊँचा रखने के लिए

सूली पर चढ़ाया जा सकता है।

कटघरे में खड़े किये जाने कि लिए

न सबूत की जरूरत है, न जुर्म का इकबाल की

क्योंकि फैसला पहले से, बिना किसी जिरह के, लिखा जा चुका है।'[20]

कई बार कवि अपनी कविताओं में अपने को रूपक बनाते हूऐ समसामयिक समाज के, व्यक्ति के सही और सठिक चित्र को रेखांकित करते हैं जो सचमुच वर्तमान समाज के यथार्थ से हमें परिचित कराने में वे सक्षम होते हैं। साथ ही उन सामाजिक सच्चाइयों के बारे में सोचने के ळिए पलभर के लिए ही सही मजबूर जरूर करते है। आमतौर पर हम जिसे नजर अन्दाज करके चलने की आदी हैं। ऐसे ही एक कविता है कवि अशोक वाजपेयी की 'जल्दी में था' शीर्षक से जिसम कवि वर्तमान समाज के व्यक्ति-चरित्र को उजागर किया है। आज व्यक्ति का चरित्र ऐसा हो गया है कि वह अपना दामन साफ रखना चाहता है सच्चाई तो यह है वह रख नहीं पाता है क्योंकि आज नहीं तो कल उसकी भी बारी आ ही जाता है। फिर भी बचकर निकलना चाहते है अपनी आखो के सामने कोई बारदात होता हैं तो भी गवाही दैने से घबराता है हालाँकि यह उसका फर्ज है कि यदि वह गवाही देने से दो पकड़ा जाय और दंडमिले तो समाज से ऐसे वारदात की संख्या धीरे धीरे धटेगी। लेकिन ऐसे मौके पर हम बहाना बनाकर दूर रहना चाहते है —

'मैं सीधा-साधा आदमी हूँ।

आज मुझे चैन से रहने देने से

क्यों रोकना चाहते हैं ?

क्यों चाहते हैं कि गवाही दूँ

उस वारदात की जिसे मैंने इतनी दूर से

पल-भर के लिए, वह भी ठीक से नहीं, देखा ?

मुझे दुख है कि वह आदमी मारा गया

आजकल जमाना खराब चल रहा है।

मैं बचकर रहना चाहता हूं।' [21]

कवि अशोक वाजपेयी इस बात से चिन्तित हैं कि जिस समाज में हम रह रहे है यह समाज किस कदर भ्रष्ट हो चुका है। अन्याय करनेवाले न डरते है और न ही शर्मीन्दा होते हैं। इसके परीत आज के समाज में वे शान से जीते है और समाज भी उन्हें ही इज्जत देते हैं, सम्मान देते हैं। इतना ही नहीं वही लोग जो जिन्दगी भर दूसरों पर जुलूम करते है उन्ही लोगों की मूर्तिया बाइज्जत अजायब घरों में संरक्षित किया जाता है। अर्थात वर्तमान समाज से अन्याय की पूजा की जाती है। कवि यह भी कहता है कि आज घृणा एक सुगठित वृन्दगान की तरह हर जगह छा रही है और अच्छाइयाँ या सतगुण हम में से लूप्त होता जा रहा है अत: हम सब बिना कैद के भी अपनी क्षुद्रताओं में वन्दी हैं। कवि वर्तमान समाज के इस तरह खास्ता हालात से त्रस्त है और वे उम्मीद करते है कि जल्द से जल्द इस हालत से परित्राण मिले। कवि अशोक वाजपेयी की कविता 'अगर हो सके' शीर्षक में कुछ यों कहते हैं —

'अब जब अन्याय के कंगूरे दमक रहे हैं

जब क्रुरतम चेहरों की मूर्तियाँ चौराहों पर से अजाय बधरों में हटा दी गयी हैं

जब घृणा एक सुगठित वृन्दगान की तरह छा रही है पृथ्वी पर

जब बिना कैद के भी हम सब बन्दी हैं अपनी क्षुद्रताओं में —' [22]

'रिवाज नहीं रहा' कवि अशोक वाजपेयी की एक उल्लेखनीय कविता है। इस कविता में कवि व्यक्ति केन्द्रिक समाज में किस तरह से हमदर्दी इंसानियत और मानवीयता जैसे गुणों का अभाव होता जा रहा है उसकी और ध्यानाकर्षण करते हैं। कवि कहते है अब किसी से भी हृदय की व्यथा कहा नहीं जा सकता है अर्थात कोई नहीं बचा है जो व्याथा को सूने क्योंकि सब अपने को लेकर ही व्यस्त है। कवि यकीन के साथ कहते हैं कि अब हृदय की व्यथा कहने की रिवाज ही नहीं रहा। कही भी नहीं न कविता में न देवता से और न ही मित्र से। कभी-कभार दिखावे के तौरपर दूसरों की दुख से, तकलीफ से हम दुखी होते हैं लेकिन वह सिर्फ पल-भर के लिए तुरन्त हम दूसरों की दुख से आँख बचाकर स्वंय के बारे में सोचने लगते हैं, अपने सुख और स्वार्थ का हिफाजत करने में लग जाते हैं। कवि इस तरह से भागम भाग की जिन्दगी जो हम जी रहे हैं, जुलुस में भीड़ में, कीर्तन में, रेले में बह रहे हैं, दूसरों की तो दूर हम अपने बारे में धीरज से सीच नहीं पाते है। ऐसे हालत में समाज में अमन-चैन कहा से आएगा कवि इस और ध्यान स्वींचना चाहता है कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं —

'अब हृदय की व्यथा कहने की रिवाज नहीं रहा
न कविता में, न देवता से
न मित्र से।
हम दुखी होते हैं दूसरों की तकलीफ से
पर जल्दी ही व्यस्त हो जाते हैं और
चिन्ता करते रहते हैं कि कही आखिरी वस न छूट छूतन जाये।
दूसरों के दुख आँख बचाकर हम कुड़ेदान में फेंक देत हैं में।
लेकिन अपने स्वार्थ तहाकर रख ते हैं थे ले या ब्रीफकेस में।
हमारा समय बेहद तेज लोकिन पता नहीं क्यों कम हो गया है,
अब धीरज से प्रतीक्षा करने का रिवाज नहीं रहा।' [23]

कवि अशोक वाजपेयी को शिद्दत के साथ पता है कि जिस समाज में हम आज है यह समाज हर तरह से टूट चूके है। कहीं भी कुछ बचा हुआ नहीं है। देखने में तो लगता है कि हम तरक्की किए है, हर तरह हरा-भरा है, मगर यह तो केवल दिखावा-भर है वास्तव में आज समाज अन्दर से टूट चूके है, मनुष्य यन्त्रवन जीवन जी रहे हैं, अन्दर से सबके सब डरे हुए है एक अप्रत्याशित का भय हमेशा सताता रहता है कही कोई उम्मीद बचा हुआ नहीं है। धीरे-धीरे सख्त अँधेरा हमें घेरता जा रहा हैं। बची-खुची टिमटिमाती हुई रोशनियाँ भी एक-एक करके बुझती जा रही है। कवि इस तरह से क्षय-ग्रस्त समाज को लेकर चिन्तित हैं वे अपनो कविता 'अब बचा ही क्या हैं' शीर्षक में अपना खेद व्यक्त करते हैं। वे इस तरह से चारों तरह से टूटे हुएँ बिखरे हुएँ समाज को देखते हुएँ कोई सहारा बाकी रहा न देखकर भी सहारा खोजते निरूपाय हाथ से स्थाह खून से कविता लिखी जा रही है। उसे पता हैं कि यह सिर्फ समाधि-लेभ भर हो सकती है। जो भी है कवि अशोक वाजपेयी को कहीं न कहीं उम्मीद कोई किरण दिखाई देती है या बची हुई है तभी तो वे कविता लिखती है —

'अप्रत्याशित का भय आत्मा से ऐसे चिपत गया है
जैसे किसी षृक्ष केतने से छाल।
अब बचा ही क्या है :
गाढ़ा और सख्त होता जाता अँधेरा,
टिमटिमाती और एक-एक कर बुझती जाती रोशनियाँ,
कोई सहारा बाकी नहीं जानते हुए भी
सहारा खोजते निरुपाय हाथ,
और स्याह खून से लिखी जाती कविता
जो अब सिर्फ समाधि लेख-भर हो सकती है।
अब बचा ही क्या है.... ?' [24]

इसी तरह से टूटे-बिखरे और अँधेरे में डूबे हुए वर्तमान समाज से नाराज-परेशान कवि अशोक वाजपेयी अपना खेद और उदगार अपनी बहुत सारी कविताओं में करते हैं। इस दृष्टि एक उल्लेखनीय कविता जिसका शीर्षक है 'रोशनी दवाने में' शीर्षक से। इस कविता में भी कवि अंदर से भयभीत आतंकित और शंक्ति समाज से एक आदमी में से दिन-ब-दिन अन्तकरण शब्द किस तरह से गायब होता जा रहा है, संक्षिप्त होता जा रहा है उस ओर ध्यान खींचता है। कवि इस कविता में कवि एक पते की बात कहते हैं कि हम जो अँधेरे में डूबते जा रहे हैं उसे हम जाहिर होने नहीं देना चाहते है। कुछ पंक्तियाँ उद्धृत किया जा रहा हैं —

'हम अपनी रोशनी दबाने
और अँधेरे छुपाने में लगे हैं :
रोशनी आती है
लगातार संक्षिप्त होते अन्त:करण के आयतन से
और हमारे समय में
ओरों को तो क्या खुद हमें रास्ता नहीं दिखा सकती
वर्तमान के हर दिन बढ़ते शब्दकोश से
अन्त:करण शब्द कब का गायब हो चुका है !' [25]

वर्तमान समय में लगभग सबसे खतरनाक और सबसे भयावह समस्या है धर्मान्धता के चलते भाई और भाई के बीच हिंसा और बैरी भाव का फैलाना। कवि अशोक वाजपेयी इससे पूर्णत: बाखबर है और अपनी कविताओं में एक जबरदस्त सरोकार के रूप में इसे जगह देते है। मानवता के दरोदी कवि इस समस्याओं को लेकर काफी नाराज तथा त्राषित हैं। कवि अपनी कविताओं के माध्यम से समाज को नरक बनानेवाली इस विष को उखाड़ फेंकना चाहते हैं। इस विषय को लेकर कवि गहराई से मन्थन करते हैं और तह तक पहुँचाना चाहते हैं। फिर वह पाते है

कि यह विष जड़ तक व्याप्त है दिसे इतनी आसानी से उखार फेंका नहीं जा सकता है। फिर भी उम्मीद को पाले हुए है। इस दृष्टि से उनकी कविताओं के आधार पर और जब-तब की गई उनकी टिप्पणी के अनुसार वे कुछ ऐसे सवालों का जावब भी तलाश करते ह जो सदियों से चलती-चली आ रही परम्परा-चरमरा जाती है। जैसा कि आखिर धर्म है क्या? इसे बनाया किसने विधाता ने या मनुष्य ने? आदि। कुल मिलाकर जो बातें कवि अशोक वाजपेयी अपनी धर्मान्धता के बरकस कविताओं में उठाते हैं वह काफी दिलचस्प, विचारोत्तेजक और दृष्टि-बहुल बातें हैं। जो कुछ देर के लिए ही सहीं औरों को भी सोचने के लिए मजबूर करते हैं। इसी के चलते उनकी एक कविता का जिक्र करना समीचीन होगा जिसका शीर्षक है 'शब्द नहीं बचे'। इस कविता में कवि सामाजिक यथार्थ को काफी आक्रामक गैली में और सपाट भाषा में अभिव्यक्ति देते है। वे कहते हैं कि 'पार्थना' (धर्म का मूल) एक खूँखार गाली बन गई है और पड़ोस हत्थायर। गलियों हिंसा की वीथिकाए बन गई है। और इसी के चलते अपने-पराए की भावनाएँ यहाँ तक फैल गया है सब के सब अपनों के बारे में सोचता है पराये का नहीं। कवि का कहना है कि सबसे अहम बात यह है कि हत्यारे के चेहरे पर दिग्विजय की आभा झलकता न कि खून के दाग। कवि इस कविता कों धर्म के नाम पर बढ़ती हिंसा तथा साम्प्रदायिक संघर्ष से मुखातिब कराते हैं। कवि अफसोस के साथ व्यक्त करते है कि 'धर्म' जिससे हम मुक्ति अथवा मोक्ष प्राप्त करना चाहते है उसी धर्म हमें भेद भाव का, अपने-पराये का मन्त्र सिखाता है वह भी इस हद तक कि हम अपने पड़ोसियों की हत्या करके भी महत काम करने का अनुभव करते है अपने को विजयी समझते है। कवि इस कविता में उस सत्य का भी उन्मोचन करते है जो कल तक अपना था आज पराया हो गया है। अर्थात धर्म के नाम पर जो देश का विभाजन हो गया हैं और अपन-

पराये की कहानी शुरू हुई जिसका अधिक अध्याय अलिखित ही रह गया। मिसाल के तौर पर कुछ पंक्तियाँ उद्धृत किया जा रहा है —

'प्रार्थना बन गई है एक खुँखार गाली
पड़ोस हत्या घर, गालियाँ हिंसा की वीथिकाएँ
जो कल तक अपने थे आज दूसरे बना दिए गए:
हत्यारों के चेहरे पर खून के दाग नहीं दिग्विजय की आभा है।' [26]

कवि अशोक वाजपेयी एक तरह से निश्चित हैं कि ईश्वर हो सकता है स्वंयभू हो लेकिन मूर्तियाँ, मन्दिर और प्रार्थनाएँ हमने बनायी है। कवि इस कविता में एक गहन अर्थ मे धर्म के तत्वों की आलोचना करते है उनके अनुसार ये जो विभिन्न धर्म हैं मन्दिर मसजिद आदि धर्म स्थान है यह सब हम लोगों ने ही बनाया है जिस कारण इसमें इतनी विविधता और वैमनस्य हैं। उनकी 'हमने' शीर्षक कविता में ऐसा ही कुछ कहा गया है —

'ईश्वर होगा स्तयम्भू
पर मूर्तियाँ, मन्दिर
और प्रार्थनाएँ तो हमने बनायीं :' [27]

इसी प्रसंग में कवि अशोक वाजपेयी की एक और कविता 'देवता' शीर्षक उल्लेखनीय कविता है जहाँ भी कवि इस तत्थ पर रोशनी डालते है कि आखिर ये धर्म, देवता आदि कैसे बनाया गया है। एक झिल–मिल, छायामय सुन्दर सी कहानी सुनाते है देवता बना ने की। उनका मानना है कि अठारह सौ उन्तीस की किसी तारीख को पत्थर के एक बड़े टूकड़े पर सिन्दर लगाकर अर्थात रँगकर सबसे पहले देवता बनाया गया था। कवि को दृष्टि इसी पर केन्द्रित है कि यदि धर्म को, देवता को हमीं लोगों ने या कि मनुष्य ने बनाया है तो उसमें सारा का सारा अच्छाईयाँ कैसे हो सकता है अर्थात जरूर उसमें भी गलतियाँ होगी, कमी होगी। मगर सवाल है हम

जो आँख बन्दकर के उसी का प्रतिपालन करते है उसकी सार्थकता कहा है ? कुछ पक्तियाँ उद्धृत किया जा रहा हैं —

'अठारह सौ उन्तीस की किसी तारीख को
सबसे पहले
पत्थर के एक बड़े टुकड़े को
सिन्दूर में रँगकर
बनाया गया था देवता।' [28]

निष्कर्ष :

अपने समय और परिवेश के प्रति चौकन्ना कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं की कायापर समय की खरोंचें और समाज का नक्षखत स्पष्ट देखा जा सकता है। अपने समसामयिक परिवेश और परिस्थिति के यथार्थ चित्रण के साथ-साथ मानव जीवन की उदात्तता और एक सुन्दर संसार की कामना उनकी कविताओं में जब-तब देखा जा सकता है। अशोक वाजपेयी की कविताओं में विश्वस्तर पर समसामयिक व्यक्ति और समाज के आन्तरिक और बाह्य जीवन और समस्याओं को भी सहेजा-समेटा गया है। सूक्ष्म-दृष्टि सम्पन्न कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं में समाज और जीवन के कई ऐसे प्रश्नों के उत्तर भी ढूँढ़ती है जिसे प्राय : अनदेखा किया जाता है। समग्र जीवन के कवि अ.वा. की कविताओं में समग्र जीवन की अनुभूति की अभिव्यक्ति हुई है।

परिवेश की कविता

कवि अशोक वाजपेयी सबसे पहले एक मनुष्य है फिर कवि, आलोचक, संस्कृतिकर्मी, आयोजक, सम्पादक आदि। दुनिया में कोई भी व्यक्ति सर्वज्ञ नहीं होता है अर्थात ढूढ़ने पर हर एक मनुष्य में कहीं न कहीं कुछ न कुछ कमी या अभाव अवश्य दिखाई देगा इसी के तहत कवि अशोक वाजपेयी को या एक कवि के रूप में उनकी कविताओं को यदि देखा जाय तो उसमें भी कहीं न कहीं कुछ न कुछ कमी या अभाव महसूस किया जा सकता है। फिर यह भी है कि एक आदमी से हम दुनिया-भर के सब कुछ की उम्मीद भी कैसे कर सकते है क्योंकि कोई भी अकेला आदमी एक जिन्दगी में करेगा भी तो कितना कर पाएगा? इसी के साथ-साथ अपनी-अपनी दृष्टिकोण की बात ते है ही। जैसा कि प्रत्येक मनुष्य की अपनी-अपनी अलग-अलग दृष्टिकोण होती है देश-दुनिया को देखने का, समझने का और व्यक्त करने का। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए भो एक कवि के रूप कवि अशोक वाजपेयी की विस्तृत कविता-संसार से होकर गुजरा जाय तो कहीं-कहीं अवश्य लगता है कि उनकी कविता के भुगोल में जो कुछ है वह तो है यदि कुछ और होता तो शायद ज्यादा अच्छा होता। अथवा उनकी कविताओं में परिवेश को जिस ढंग से चित्रण किया गया है अगर कुछ और विस्तार से और स्पष्ट रूप से रखा होता तो लगता है और ज्यादा अच्छा होता। ऐसे ही सम सामयिक परिवश और परिस्थिति की कई ऐसे विषय हैं जिससे समाज आक्रान्त है, जिससे समाज जुझ रहे है जिसे समसामयिक दौर की ज्वलन्त समस्या के रूप चिह्नित किया जा सकता है उन सबकी स्पष्ट छबि और प्रतिरोध की जोरदार अपील कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं में अभाव अनुभव होता है। है भी तो वह सिर्फ सांकेतिक रूप में जबकि आम तौर पर व्यक्तिगत जीवन में जुझारू स्वभाव के कवि

तथा अत्यन्त मुखर कवि अपनी कविताओं में कुछ अधिक विनयशील तथा स्वल्प भाषी नजर आते है। दूसरी भाषा में कहा जाय तो कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं में गाँव का देश भारत वर्ष के गाँव का जो जीवन हैं हजारों समस्याओं से जर्जरित जी जान से मेहनत करने के बावजूद भूखा-प्यासा रहता, आज भी किसी न किसी रूप से शोषित हैं, अव्यवस्था, अराजकता, अमानवीयता आज भी जहाँ शिद्दत के साथ मौजूद है। इन सबका यथार्थ चित्रण उनकी कविताओं में कम ही दिखाई देता है। जो उनको समकालीनता के कहों दूर खिंच ले जाती है। जबकि कवि अशोक वाजपेयी भी समाज में अमन-चैन की कामना करते हैं लेकिन इन सबको नजरअन्दाज करके वह कैसे सम्भव? पहले बिमारी को पहचानना होगा फिर उसी हिसाब से दवाई देनी पड़ेगी तभी तो रोग निरामय होगा। इस प्रसंग मे कृष्ण गोपाल वर्मा का कहना तर्क संगत लगता है जो उद्धृत किया जा रहा हैं — 'लेकिन यह मानना होगा कि अशोक की कविता, कविता के महानगरीय और अरवन संघर्षो से कटी हुई है और इस कबावकी 'अलौक' और 'आध्यात्मिक' से समाहार करती चलती ह। 'समकालिकता' से दूरी ही नहीं बरती गई, उसके 'व्याकरण' को भी रिजेक्ट किया गया है। जिस भूख-प्यास, शोषण, अव्यवस्था, अमानवीयता को अशोक के अग्रज और समकालीन कवि उठाते हैं और उसी में से नवीनता का आविष्कार करके एक जटिल समाज की संश्लिष्टता में प्रस्तुत करते हैं अशोक उसके प्रति पूर्णत : उदासीन है। मानवीय स्थिति की बहुआयामी त्रासदी का, नियति के प्रश्नों में अध्यात्मिक पीड़ा में तर्जुमा हो जाता है।' [29]

कवि अशोक वाजपेयी की कुछ कविताओं को छोड़ दे तो यह कहना सम्भव और समीचीन ही होगा कि वे समसामयिक सामाजिक परिवेश विशेषत : गाँव से कटकर चलते दिखलाई पड़ते हैं। कुल मिलाकर कवि अशोक वाजपेयी की

कविताओं में सिधे जीवन संग्राम की झाँकी कम, और जीवनोत्सव का माहौल अधिक उज्वल दिखाई पड़ता है।

कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं में एक बड़ा भाग प्रेम-सम्बंधी कविताओं का हैं। और यही प्रेम कविताओं को लेकर ही दरअसल कवि अशोक वाजपेयी अपने समकालीनों द्वारा प्रश्नों के, और स्पष्टीकरण के सम्मुखीन होते हैं। होगा भी क्यों नहीं जिस समय और समाज में 'प्रेम' की इजाजत और मान्यता नहीं है बल्कि प्रेम को एक सामाजिक अपराध माना जाता है। उसी समाज में उसी समय में इस तरह से खुल्लुमखोल्ला प्रेम करना, प्रेम का इजहार करना वहा भी देह का, रूप का, सौन्दर्य का अधिक से अधिक महत्व देना। प्रम के भावनात्मक धरातल को ध्वस्त करके दैहिक सुख-भोग का वर्चस्व स्थापित करना तो इन्हीं सब विषयों से पुष्ट कवि अशोक वाजपेयी की जो प्रेम कविताएँ हैं उन सब को लेकर पहले से ही आपत्ति है और आज भी है। सचमुच उनकी विशेषत : पहले दौर की जो कुछ प्रेम-कविताएँ है उन सब को देखते हुए यह जिज्ञासा और सवाल जरूर उठता हैं कि प्रेम सदियों से कवि के लिए प्रिय विषय रहा है कविता के लिए स्थायी समय रहा है वह तो ठिक है लेकिन इस तरह से प्रेम कवितायओं के नाम पर ऐन्द्रिकता का खुला इजहार का क्या जरूरत थी? एक भावना के रूप में या संवेदना के रूप में न देखकर सिर्फ देह का, रूप का, सुख-भोग का जैसा के तैसा वर्णन पूर्ण प्रेम-कविताए समाज में, व्यक्ति के उत्कर्ष साधन करने में सहायक होगा? क्या इन सब कविताएँ मानव और मानव जीवन में कोई सकारात्मक भूमिका अदा करने में सफल रहेगा? या कि कहीं न कहीं इस से समाज में नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा समाज में? इसी के साथ-साथ प्रेम कविताओं के नाम पर जो व्यक्तिगत प्रेम की अभिव्यक्ति यह कहा तक समीचीन है? तो इन सवालों का जवाब उनकी प्रेम कविताओं में मिलना मुश्किल है। उदाहरण के रूप में कुछ कविताओं की पंक्तियाँ उद्धृत किया जा रहा हैं

–'जब एक सुडौल गोरा नितम्ब

थोड़ा सा मुड़ता है

तो देवताओं को हिचकी आने लगती है।' [30]

'आकाश नीचे लेटा होगा

अपने नक्षत्रों, आकाशगंगाओं में जगमगाता,

पृथ्वी होगी ऊपर

उसके उत्तुंग शिखर

उसकी सघन उपत्यकाएँ।

झरना फूटेगा

नीचे से ऊपर की और

नदी बहेगी पृथ्वी से आकाश की ओर

रति की मन में अनेक सम्भावनाएँ हैं। ' [31]

'अपनी ही गझिन झाड़ी से ढँका

अपने ही रस से द्रवित

वह रहस्यफूल अनजाने भी

प्रतीक्षा करता है

बिधँने – भरे जाने की

किसी जलंत पुष्च सें।' [32]

'शरीर, शरीर का स्वप्न है

शरीर का सच उसके बाहर है —

दूसरे शरीर में,

जिसे वह भूलना चाहता है।' [33]

इन सबके अलवा पहला चुम्बन, प्यार करते हुए सूर्यस्मरण, जब हम प्यार करते हैं, कहा होती है दुनिया, अपने शरीर से कहने दो, प्रेम के लिए जगह, केलि, पत्थर से कलि करता है पत्थर, सदद्य स्नाता आदि कविताएँ जो हैं इन सबसे मानव या समाज जीवन के किसी क्षेत्र में किसी भी रूप में प्रगति अथवा विकास में सहायक होगा इसमें सन्देह हैं। हालाँकि उनके बाद में लिखी गई कई प्रेम कविताएँ हैं जो इस सवालों और जिज्ञासाओं के घेरे से बाहर है जहाँ प्रेम का उदात्त रूप, विराट और व्यापक रूप का समावेश है। जबकि कवि अशोक वाजपेयी बहुत बार इन सबकी स्पष्टीकरण दे चुके हैं मगर जवाब चाहे जो भी है लगता तो यही है कि प्रेम को यदि एक भावनात्मक स्तर तक, एक संवेदना के रूप में चित्रित किया जाता वही ज्यादा अच्छा होता और दूर तक प्रभाव विस्तार करने में भी सफल होता। अवश्य उनका जो कहना है कि 'अतिरेक' नामक दुर्गुण उनमें है जिसके कारण उनकी कविताओं में कुछ कमजोरी आइ है विशेषत : प्रेम कविताओं में इस पर ध्यान दिया जाना चाहिए। फिर बी यह भी तो वहो हुआ जो कि भूल करके माफी माँगने जैसा। इस प्रसंग में कवि अशोक वाजपेयी सबसे ज्यादा आलोचित आरोपित होते हैं। जैसा कि उनकी सभी प्रेम-कविताओं को लेकर इरह की आपत्तियाँ नहीं है। कुछ प्रेम कविताए सचमुच अच्छी प्रेम कविताए हैं जो प्रेमानुभ्ति के उदात्त स्वरूप का उम्दा मिसाल के रूप में स्वीकारा जा सकता है। इसी के चलते कृष्णगोपाल वर्मा का कम्थन काफी महत्वपूर्ण लगता है वे भी कवि अशोक वाजपेयी के प्रेम कवितओं को लेकर ऐसा विचार रखते है जिसे यहाँ उद्धृत किया जा सकता है -- 'बावजूद एक तरह की गीतात्मकता में बँधे हुए उद्दाम आवेग के प्रेम कविताओं का मुख्य स्वर एक नख-सिख कला प्रवीण आक्रान्त पुरुष का है। उसकी भाषा यह संकेत फेंकती है, प्रतिपक्ष के पास न तो अपने शब्द है न ही संवाद के लिए जमीन तैयार है। सब कुछ एक पक्षीय है। नारी देह है मात्र देह और उसकी

आलोकित छवि में नायक निश्चित, तृप्त और प्रसन्न है। यहाँ बिहारी सतसई व कामायनी से इंटर टेकस्वुअल अनचर्पाठीयता कायम होते हुए भी सतसई की नायिका का खिलंदडापन चांचलय और ईड़ा की वाचाल बौद्धिकता का भी नितान्त अभाव है। सारा कार्य व्यापार कर्ता के हाथ में है। यह भाषा भी जैसा कि, जाहिर है यह वर्गीय देह लिप्सा के रुमान की है। इस और इसी तरह से अशोक बार-बार लौटते है, प्रेमिका को सोसियोलोजिकली फ्रीज कर देते है। कवि सर्वस्वग्राही है और उसमें निमग्न रहना चाहता है:

'कहा होती है दुनिया इस समय
जब मैं तुम्हे अपने सारे अंगों से थाम लेता हूँ
और तृप्टि में स्थिर कर देता हूँ
तेरा सौन्दर्य
या
सूनो अपने हाथ दो
सुनो अपनी बाँह दो
सुनों अपने नयन दो
सुनो अपने होठ दो
सुनो यों थको मत
पसीजो मत
सुनो, सुनो यों ऐंठो मत

और यह क्रम अनवरत 'आविन्यो' तक चलता है :

उसकी बाँहें घेरती हैं
प्रेम को
प्रिय को

आकाश को

आकाश और समय को

कहीं-कहीं तो छोर के अन्त तकः

सत में

प्रार्थना में स्वप्न में

उसके ओंठ बूदबुदाते हैं

वह पृथ्वि को

अन्तरिक्ष को

सारे ब्रह्माण्ड को

पर्यत्सुक करती है

अपने प्रिय समागम के लिए'

अशोक आश्यर्यजनक सफलता से भौतिक सन्दभों को दर कि नार कर लेते हैं। उन्होंने 'आविन्यों में फ्रांस के मध्यकालीन मठ को चुना जो कार्थुसियन सम्प्रदाय का एक ईसाई मठ ला शत्रुज (है) यह सम्प्रदाय मौन में विश्वास करते हैं सो सारा स्थापत्य एक तरह से मौन का ही स्थापत्य (है) 'यहाँ पोलिटीकली इनकरेक्ट होने से पीड़ित भी नहीं हो सकते। प्रेम की अनुभूति यहाँ एक खुले, निर्विरोध समर्पन की रीति रूढ़ि से परे अनंत की और जहाँ दोनों अस्तित्व ही बता की लय में विलियन की रेखाएँ छूवे लगते हैं, एक तनावहीन शून्य की भारहीन स्थिति जहाँ अन्तसू भौतिकता के तकाजों से पूर्णतः मुक्त ह। इस संग्रह में प्रेमासक्ति बुर्जुआ भोग से परे की बात है बहुत उँसी भाव भूमि है।' [34]

इसमें कोई सन्देह नहीं कि कवि अशोक वाजपेयी अपने समसामयिक कवियो में मृत्यु या मृत्यु-बोध से सम्बंधित सबसे अधिक कविता लिखते हैं। समय को क पक्ष जीवन का एक अंश, एक पड़ात मृत्यु संवेदनाओं को इस तरह से

व्यापक फलक पर देखना, अपनी कविताओ रुपायन करने सचमुच काबीले तारीफ है। साथ ही उनके द्वारा लगभग एक अनछूए, अनदेखा दृश्य पर कारगर हस्तक्षेप माना जा सकता है या जाना चाहिए। मृत्यु-संवेदना वैसे भी काफी संवेदनशील मुद्दा है जिस पर कुछ कहना लिखना या चर्चा करना इतना आसान मामला भी नहीं है फिर भी जैसा कि अपनी कविताओं में हमेशा नई जमीन की खोज करनेवाले कवि अशोक वाजपेयी कुछ हद तक जोखिम उठाते हुए भी इस पर दृष्टि डालते हैं। व इस दृष्टि से काफी सफल भी रहें हैं।

जैसा कि कवि अशोक वाजपेयी की मृत्यु सम्बंधी कविताओं को लेकर कोई आपत्ति या परेशानी किसी को भी नहीं है। फिर भी इन सब कविताओं का अध्ययन करने के उपरान्त एक चीज खटकता है कि यहाँ भी कवि के विचारों के सिलसिले में एक रूपता नहीं है। हालाँकि अपने को नास्तिक कहनेवाले कवि यहाँ भी मृत्यु को लेकर किसी भी धर्म के गिरफ्त फसते नहीं है। स्वयं कवि अशोक वाजपेयी भी इस बात से सहमत हैं और दोहराते भी है। मगर अध्ययन उपरान्त विचार-विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि जाने-अनजाने में ही कवि यहाँ भी धर्म के चंगुल से बच नहीं पाता है और एक समस्या के रूप में और गहरा जाता है, उलझा जाता है तव जब कवि एक नहीं अनेक धर्मो को अवधारण या विचारों के गिरफ्त में आ जाते हैं। जैसा कि हर एक धर्म में मृत्यु को लेकर अलग-अलग विचार और मान्यताएँ रही हैं। कवि अशोक वाजपेयी की मृत्यु सम्बंधी कविता में एक साथ कई धर्म के विचारों और मान्यताओं का घोल-मिल देखने को मिलता है जो उनकी मृत्यु-बोध की कहीं न कहीं सुलझाने के बजाय उलझा देता हुआ नजर आता है।

कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं में 'ईश्वर' का स्वरूप है वह कुछ स्पष्ट नहीं है। हालाँकि ईश्वर शब्द का प्रयोग उनकी कविताओं में बार-बार हुआ है। कई बार कविताओं की पंक्तियों में और शीर्षक के रूप में भी। लेकिन उनके

इस ईश्वर शब्द के साथ असमंज सी स्थिति बनी हुई कि आखिर यह ईश्वर है कौन? इस ब्रह्मांड के सृजन करनेवाला जैसा कि हिन्दु धर्म में विश्वास किया जाता है या कोई व्यक्ति अथवा कोई चीज? यहाँ स्मरणीय है कि कवि अशोक वाजपेयी अपने आप को नास्तिक घोषित करते हैं। तो सवाल यह होता है कि एक नास्तिक को ईश्वर से क्या मतलब?

कुल मिलाकर कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं में ईश्वर सम्बंधी अवधारणाएँ कुछ धूँधला-सा है कही उसकी उपस्थिति है तो कहीं अनुपस्थित-सा लगता है। जिससे सही और सठिक धारणा करने में कुछ मुश्किल-सा हो जाता हैं कि कवि को ईश्वर से किस तरह का नाता है। 'ईश्वर के चार विलाप' शीर्षक कविता में जाहिर होता है कि ईश्वर है और यह पृथ्वी उसीकी सृष्टि है।

'अनुपस्थिति' शीर्षक कविता इस दृष्टि से एक उल्लेखनीय कविता है। 'आविन्यों' काव्य-संग्रह में संग्रहीत इस कविता में कवि ईश्वर की उपस्थिति पर पूर्णत : यकीन करते हैं ऐसा लगता है। आविन्यों का इस सुनसान माहौल में ऐसा लगता है कवि पल-पल पग-पग पर ईश्वर का उपस्थिति का अहसास करते हैं —

'यहाँ कोई पुकार, कानाफुसी, आर्तनाद या हँसी नहीं
यहाँ कोई झलक, झाँकी नहीं
यहाँ कोई प्रार्थना, कोई शोभायात्रा, कोई विरह-मिलन नहीं
यहाँ अनुपस्थिति को नाम देते हुए
मैं, एक अधेड़ पथहारा कवि, बरबस चीखना चाहता हूँ :
है ईश्वर !' [35]

एक और उदाहरण देखा जा सकता है उनकी कविता 'ईश्वर के घर में' से। इस कविता में भी कवि अशोक वाजपेयी स्वयंभु, स्वयंदीप्त, ईश्वर की सत्ता का अस्तित्व स्वीकारते हैं कुछ पंक्तिया द्रष्टव्य हैं —

'कौन जानता है कि यह उसका घर है

यहाँ जो छूट गया लगता है

प्राचीनता, रहस्य और भय

निर्जनता

कया उसके यहाँ रहने के अवशोष हैं ?

या कि यहाँ उसके सामान से अँट न पाई चीजें ?' [36]

इसी तरह से कई कविताएँ हैं जहां कवि अशोक वाजपेयी ईश्वर की सत्ता को स्वीकारते हैं। उदाहरणार्थ — 'अपने पोते की दूसरी वर्षगाँठ पर एक प्रार्थना', ईश्वर, सबकुछ छोड़कर नहीं, नहीं आ पाँएगे, आदि कविता कविताएँ। इसके अलवा मृत्यु सें सम्बंधित कविताओं में भी कवि कहीं न कहीं ईश्वर या किसी महान शक्ति के अस्तित्व पर बिश्वास करते दिखाई देते हैं।

इसके विपरीत कवि अशोक वाजपेयी की कई कविताएँ हैं जहाँ ईश्वर के अस्तित्व का अस्वीकार है भी तो वहाँ भी एक रूप नहीं कहीं निर्गुण निराकार तो कहीं सगुण, मुर्तिमान एक उदाहरण लिया जा सकता है उनकी गद्य कविता 'ब्रह्मारव्य' शीर्षक से–

'सब कुछ पीछे

छोड़कर–गँवाकर सिर्फ शब्द लिये पता नहीं हम कहाँ पहुँचे।

जहाँ पहुँचे वह ब्रह्म का अरण्य नहीं था। जब तक शब्द शोष हैं,

ब्रह्मारण्य तक नहीं पहुँचा जा सकता। हमने यह शब्दों में ही

जाना। जब तक शब्द हैं, बह्म कहाँ, अरण्य कहाँ ?' [37]

कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं को लेकर एक समस्या यह है कि उनकी बहुत सारी कविताएँ उनकी निजी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति मात्र है या उनकी व्यक्तिगत चिन्तवृत्तियों से आसक्ति रखनेवाली कविताएँ हैं। इन कविताओं

में जाहिर है एक व्यापक परिवेश की अनुपस्थिति रहा है। कुल मिलाकर इन सब कविताओं में स्वान्त, सुखाय ही प्रतीत होती है। कवि अशोक वाजपेयी अपने परिवार के सदस्यों जैसे माँ, पिता, बेटा, बेटी, पोते आदि के नाम पर या उन सबके सम्बंध कविता लिखते हैं फिर बहुत सारी कविताएँ हैं जो कवि अपने बारे में और अपनी ही व्याथा कथा को अभिव्यक्त करते हैं। यह कविताएँ व्यापक समाज का थवा परिवेश का हिस्सा बनने से रह जाता है और अधिक से अधिक इन सब कविताओं को कवि की आपवीति बनकर ही रह जाता है। अच्छा तो यह होता यदि कवि इन कविताओं में व्यक्त संवेदना को सामाजिक सन्दभों से जुड़कर अभिव्यक्ति देते। हालाँकि इन सब कविताओं में व्यक्त संवेदना कम महत्बपूर्ण या विचार शुन्य नही है। लेकिन व्यापक परिवेश से सम्बंध और सन्दर्भ न होने के कारण इसकी परिधि संकुचित हुआ-सा लगता है। कवि अशोक वाजपेयी की काव्येतर कलाएँ जैसे संगीत, नृत्य, चित्रकला तथा विभिन्न कलाकारों से सम्बंधित जो कविताएँ हैं वह भी दो-चार कविताओं को छोड़कर बाकी सब कविताएँ दूर तक प्रभाव छोड़ने में असफल होता दिखाई पड़ता है, जो केवल आस्वाद परक कविता जैसा ही लगता है। जिसका समाज या परिवेश से न कोई सिधा सम्बंध है न ही कोई विचार या विमर्श निकलकर आता है।

इस दृष्टि से कवि अशोक वाजपेयी की कुछ कविताओं का उल्लेख किया जा सकता हैं — मैं अपने गुणाह, अलक्षित, उन्हीं में से एक, हमने शुरूआत तो की थी, आदि। इस सब कविताओं में कवि अधिकतर निजी अनुभव को परोसते हैं जो किसी फालतु या बकवास भी नहों है, कापी गहरा विचार भी इन कविताओं में है। सच्चाई तो यह है यह सब जो कवि का उदगार है कटू यथार्थ है, लेकिन शायद कवि इन विचारों को भावों को किसी दूसरे ढंग से उपस्थापन करते तो अधिक बेहतर होता और अपने परिवेश से सिधा सम्बंध जोड़ पाता।

सम्प्रेषणीयता की दृष्टि से भी कवि अशोक वाजपेयी की कुछ कविताओं में समस्या खड़ी हो जाती है। कवि इन सब कविताओं में असल में जो भाव या विचार की अभिव्यक्ति देते हैं वह अन्त तक बीच मे लटका रह जाता है पाठक तक पँहुच नहीं पाता ह। हो सकता है जो विचार कवि का रहा है वह काफी महत्वपूर्ण और अपने परिवेश पर सही टिप्पणी हो! मुश्किल वही होता है यदि समझ में ही नहीं आता है तो वह किस काम का? कहा जाता है कि इसके लिए पाठक को प्रबुद्ध होना पड़ेगा। प्रश्न होता है सबके-सब पाठक इटनी समझदार और प्रबुद्ध होगा? फिर कवि अशोक वाजपेयी की कुछ कविताओं में एक साथ कोई विचार या भाव का उमड़ते हुए दिखाई पड़ता है जो आखिर कोई भी एक विचार या प्रभाव पैदा करने में नाकाम-सा लगता है। ऐसा लगता है कि भावों का विस्फोट-सा हुआ हो। कवि अशोक वाजपेयी की ढेर सारी कविताओं में कुछ कविताएँ ऐसी है जहाँ इस तरह की उलझने पैदा करती है, जैसे ब्रह्मारण्य मैं, अपने गुणाह, उन्हीं में से एक, दुनिया बदलना, लोग पवित्र को बचाते हैं, कत्ताड़ी, दुनिया बदलना, यह समय है आदि। कुलमिलाकर इन सब कविता पूर्ण आशावादी फिर निराशाग्रस्त। उदाहरणार्थ उनकी कविता 'दुनिया बदलना' शीर्षक कविता में वे कहते हैं आज दुनिया बदलना मनुष्य के हाथ में नहीं रहा है —

'कि क्या मनुष्यता के इतिहास में सचमुच
वह मुकाम आ चुका
जब दुनिया बदलना आदमी के हाथ में नहीं रहा,
न उसके वस में ?' [38]

अर्थात लोगो पर अब भरोसा किया नहीं जा सकता है। मगर कवि की एक अन्य कविता 'लोग पवित्र को बचाते हैं' शीर्षक में कवि उम्मीद जताते ह कि जैसे भी हो लोग ही पवित्र को बचाते हैं नकि देवता न देवदूत —

'उसकी रक्षा नहीं कर सकते देवता,

न देवदूत उस पर पहरा दे सकते हैं,

उसे बचाते हैं लोग ही।

× × × ×

पवित्र अपने को बचा नहीं सकता

लोग ही पवित्र को बचाते हैं।' [39]

एक उलझन कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं का शीर्षकों को लेकर भी रहा है। एख ही शीर्षक से कई कई कविताएँ हैं। जहाँ भाव या अनुभूति के स्तर पर कोई ताल-मिल दिखाई नहीं पड़ता है। हो सकता है ऐसा करने में कवि का उद्देश्य रहा हो। मगर बाहरी तौर पर और आम पाठक के लिए यह एक उलझन-सा हो जाता है, और यह समझने में कठिनाई पैदा हो जाता है कि आखिर ऐसी कविताओं में आखिर कवि कहना क्या चाहता है अथवा एकाधिक बार प्रयोग शीर्षक सम्बंधी कविताओं में कवि भिन्न-भिन्न विषय और भावों की अभिव्यक्ति जो करते हैं उसका आशाय क्या है? इस तरह से जिन शीर्षकों का एकाधिक बार प्रयोग हुआ है उसमें हाथ, घर, प्रतीक्षा, ईश्वर, प्रार्थना, अन्त, प्रेम, प्रेम के लिए जगह, बिदा आदि उल्लेखनीय हैं। हो सकता है इन सब कविताओं के लिए कोई और शीर्षक रखा जाता तो इस तरह की दुविधा पूर्ण स्थिति न होता।

निष्कर्ष :

कुल मिलाकर परिवेश की कविता के तहत कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं का अभ्यायन करने के उपरान्त जो स्थिति बनती है कवि अशोक वाजपेयी की कविता की दुनिया उनकी अपनी दुनिया है जिसे देखने की विन्यस्त करने की दृष्टि और तरीका भी उनकी अपनी है। ठिक वैसे ही उनकी कविताओं

का परिवेश भी उनके द्वारा ही सृजित और यह एक भी बनता है कि हर कवि अपनी रचनाओं म अपनी ही दुनिया को साकार करे। इसके अलवा जैसा कि एक कवि से, व्यक्ति से सबकुछ की उम्मीद करना भी बेकार है। फिर भी लगता यह है कि कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में अधिकतर व्यक्ति या समाज के बाहरी परिवेश से ज्यादा आभ्यान्तरीण परिवेश को अधिक महत्व प्रदान किया है जो कहीं ज्यादा सूक्ष्म होता है और साधारण पाठकों के लिए उसे पकड़ना और समझना मुश्किल सा हो जाता है। हालाँकि यह स्थिति उनकी सभी कविताओं के लिए नहीं। तो यदि कवि अपने समसामयिक परिवेश को कुछ और सिधे अपनी कविताओं में चित्रण करते तो शायद परिवेश पर (पाठकों पर) कहीं ज्यादा असर पड़ता। लेकिन यह भी तो है कि साहित्य हमेशा सामाजिक सरोकार तक महदूद नहीं हो सकता है। जैसा कि कवि अशोक वाजपेयी का कहना है — 'साहित्य न तो सामाजिक सरोकारों तक महदूद हो सकता है, न ही वह सर्वथा निजी मामला है। मुश्किल यह है कि इधर बरसों से ऐसा बौद्धिक माहौल बनाया गया है कि वह कुछ तथा कथित सामाजिक दृष्टियों के उपनिवेश से अधिक कुछ नहीं माना जाता। यह अपने आप में साहित्य के प्रति उपभोक्तावादी दृष्टिकोण है। आप उसमें, उसकी पूरी जटिलता में रस नहीं लेते बल्कि सामाजिक सरोकार का उपभोग करते हैं। साहित्य जीवन और भाषा में साहित्यकार की हिस्सेदारी है।

सन्दर्भ :

1. घास से दुबका आकाश – अशोक वाजपेयी, 2008 –भूमिका
2. मेरे साक्षात्कार अशोक वाजपेयी –सम्पादक : अरविन्द त्रिपाठी,1998 पृ.16
3. समय के पास समय – अशोक वाजपेयी, 2000 –भूमिका
4. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज – अशोक वाजपेयी, 2003 पृ. 141
5. समय के पास समय – अशोक वाजपेयी,2000 –भूमिका
6. प्रतिनिधि कविताएँ अशोक वाजपेयी – सं. अरविंद त्रिपाठी, 1999 –भूमिका
7. प्रतिनिधि कविताएँ अशोक वाजपेयी – सं. अरविंद त्रिपाठी, 1999 –भूमिका
8. दुख चिट्ठीरसा है – अशोक वाजपेयी, 2008 पृ. 68
9. दुख चिट्ठीरसा है – अशोक वाजपेयी, 2008 पृ. 137,38
10. दुख चिट्ठीरसा है – अशोक वाजपेयी, 2008 पृ. 39
11. दुख चिट्ठीरसा है, अशोक वाजपेयी, 2008 पृ. 44
12. दुख चिट्ठीरसा है, अशोक वाजपेयी, 2008 पृ. 64
13. इबारत से गिरि मात्राएँ, अशोक वाजपेयी, 2002 पृ. 40
14. दुख चिट्ठीरसा है, अशोक वाजपेयी, 2008 पृ. 61
15. तिनका–तिनका भाग– 2, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 154
16. कुछ रफ़ु कुछ थिगड़े, अशोक वाजपेयी, 2004 पृ. 70
17. दुख चिट्ठीरसा है, अशोक वाजपेयी, 2008 पृ. 38
18. इबारत से गिरि मात्राएँ, अशोक वाजपेयी, 2002 पृ. 90
19. इबारत से गिरि मात्राएँ, अशोक वाजपेयी, 2002 पृ. 93
20. इबारत से गिरि मात्राएँ, अशोक वाजपेयी, 2002 पृ. 94
21. दुख चिट्ठीरसा है, अशोक वाजपेयी, 2008 पृ. 63
22. इबारत से गिरि मात्राएँ, अशोक वाजपेयी, 2002 पृ. 38

23. इबारत से गिरि मात्राएँ, अशोक वाजपेयी, 2002 पृ. 91
24. दुख चिट्ठीरसा है, अशोक वाजपेयी, 2008 पृ. 45
25. दुख चिट्ठीरसा है, अशोक वाजपेयी, 2008 पृ. 48
26. विवक्षा, अशोक वाजपेयी, 2006 पृ. 195
27. दुख चिट्ठीरसा है, अशोक वाजपेयी, 2008 पृ. 80
28. तिनका–तिनका भाग– 2, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 107
29. अशोक वाजपेयी पाठ कुपाठ, सम्पा: सुधीर पचौरी, 1999 पृ. 156
30. उम्मीद का दूसरा नाम, अशोक वाजपेयी, 2004 पृ. 80
31. उम्मीद का दूसरा नाम, अशोक वाजपेयी, 2004 पृ. 38
32. तिनका–तिनका भाग– 2, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 264
33. तिनका–तिनका भाग– 2, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 286
34. अशोक वाजपेयी पाठ कुपाठ, सम्पादक : सुधीश पचौरी, 1999 पृ. 153, 54
35. तिनका–तिनका भाग– 2, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 238
36. तिनका–तिनका भाग– 2, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 219
37. तिनका–तिनका भाग– 2, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 161
38. दुख चिट्ठीरसा है, अशोक वाजपेयी, 2008 पृ. 74
39. दुख चिट्ठीरसा है, अशोक वाजपेयी, 2008 पृ. 66, 67